टैगोर कला में भारतीय सामाजिक सन्दर्भ

शालिनी रानी
चित्रकला विभाग,वनस्थली विद्यापीठ
(राजस्थान)

कला का अस्तित्व सामाजिक है। जिस प्रकार सामाजिक विकास की परिस्थिति होती है वैसी ही समाज की विचारधारा बनती हैं व उसी के अनुरूप लोगों के मस्तिष्क में बिम्ब विकसित होते हैं। ये बिम्ब ही कला – रूपों की प्रेरणा बनते हैं। समाजिक विकास उसकी चुनौतियों तथा सामाजिक आंदोलनों के प्रत्येक चरण के साथ कला के विकास का प्रत्येक चरण सम्बन्धित रहता हैं। कलाकार जिस युग में आर्विभूत होता है उस युग का चित्र अर्थात उसकी समस्यायें, चुनौतियाँ, उपलब्धियाँ स्वतः ही उसकी कृतियों में झाँकने लगती है। इच्छा होने पर भी वह अपने समय के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता क्योंकि कलाकार का निर्माण उसके समकालीन युग की परिस्थितियों से ही होता हैं और प्रत्येक युग में कलाकार इन परिस्थितियों से उत्पन्न मुद्दों व चुनौतियों का समाधान ही अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता हैं। अब चाहे कलाकार किसी भी विधा के माध्यम से अपने समाज की व्यथा को अपनी अनुभूति का चौला पहना प्रस्तुत करें।

अतः इस प्रकार एक व्यक्ति या कलाकार सामाजिक विषय–वस्तु से प्रेरित होता है, व उसे मूलभूत मानवीय मूल्य और अनुभव प्रदान कर सार्वभौम बनाता हैं। ऐसे ही भारतीय कला के गंधर्व रवींद्रनाथ टैगोर थे जिन्होंने न केवल तत्कालीक भारतीय समाज को उसकी समस्याओं, चुनौतियों से आगाह ही नहीं किया बल्कि भविष्य के समाज को अनुप्रेरित करने का मार्ग भी प्रस्त किया। उनकी कृतियाँ भारतीय समाज के लिए केवल सुन्दर ही नहीं बल्कि अनुकरणीय बनी हैं। टैगोर ने भारतीय समाज के लगभग प्रत्येक मुद्दे या पक्ष व चुनौतियों पर चिंतन– मनन किया व अपने अनुभव को साकार रूप दे समाज को उज्जवल भविष्य व वर्तमान प्रदान करने का प्रयास किया। उन्होंने तत्कालीन समाज की नारी समस्या, उनकी चुनौतियों, शिक्षा का वास्तविक विकास व समाज में भारतीय परम्पराओं ,संस्कृतिक, मूल्यों अर्थात समग्र भारतीय समाज की उन्नति हेतु जीवन भर अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये व साथ ही समाज को जाग्रत किया। यह सब हम उनके सम्पूर्ण साहित्यिक रचनाओं, उनके व्याखानों, यहाँ तक की उनके जीवन की अन्तिम सन्धया कालीन कला साधना में भी पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। विश्वभारती शान्तिनिकेतन, श्री निकेतन आज भी उनके शत कार्यों का साकार प्रमाण व भारतीय सामाजिक चुनौतियों के लिए उठाये गये सफल कदमों का परिणाम है।

यह गुण टैगोर ने अपने परिवार से ही पाया पितामह, महर्षि पिता देवेन्द्रनाथ, भाई, बंधु आदि सभी से। टैगोर अपने आस–पास के सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण से सदैव प्रभावित रहे। इन्होंने पारिवारिक प्रभाव व पैतृक देन के फलस्वरूप एक ऐसा वातावरण प्राप्त किया जो सक्रिय रूप से पाश्चात्य न होकर भी ब्रह्म समाज के प्रभाव के कारण परम्पराओं एवं अनादि काल से चले आ रहे रीति–रिवाजों से मुक्त था। अतः 1881 ई. में ही तरूण टैगोर अपने **"वन साइडेड रिफार्म"** (एकांगी सुधार) शीर्षक लेख में निम्न बातें लिख सके :

"यदि कोई सामाजिक नियम हमारी स्वतंत्रता प्राप्ति में सहायक नहीं है तो उसे इस कारण ही माना नहीं जा सकता कि वह एक नियम है।.....सदा ही कुछ लोग ऐसे होते हैं जो (ऐसा न मानने पर) दुःखी होंगे।.... उन लोगों के लिए अतीत ही स्वर्णकाल है, वर्तमान कभी नहीं।"

उपरोक्त लेख में टैगोर की वाणी तत्कालिक समाजिक नियमों पर एक आलोचनात्मक व्यंग्य कर रही हैं क्योंकि उस समय समाज में अनेक रूढिवादी प्रथा, परम्पराए समाज में जहर घोल रही थी। जो व्यक्ति के लिए उनकी वर्तमान स्वतंत्रता से बढ़कर थी। ये नियम सही मायने में समाज की स्वतंत्रता के आड़े आ रही थे। जैसे पर्दा प्रथा, सती प्रथा, हिन्दू धर्म के रूढिवादी नियम इत्यादि। लेकिन रवीन्द्र के घर के वातावरण व बंगाल के सामाजिक वातावरण में अंतर था जो रवीन्द्र की समझ को विकसित व परिपक्व बना सका। टैगोर परिवार ही एक ऐसा प्रथम परिवार था जहाँ स्त्रियाँ पर्दा नहीं करती थीं। सती प्रथा व हिन्दू धर्म के कठोर रीति–रिवाजों आदि के विरूद्ध पहले पितामह का योगदान फिर आगे इसी क्रम में महर्षि पिता के महत्वपूर्ण प्रयासों से जो कार्य किए गए उन से समाज की तो उन्नति हुई ही, साथ ही रवीन्द्र के व्यक्तित्व को बनने में एक उपयुक्त वातावरण प्राप्त हुआ।

टैगोर के मस्तिष्क में बंगाल के तत्कालिक समाज में व्याप्त उन विरोधी धाराओं की जो ध्वनि प्रतिबिंबित हुई वह हमें उनकी रचनाओं में सुनाई पड़ती। एक अन्य उदाहरण जहाँ टैगोर की वाणी और भी अधिक स्पष्ट वादिता लिए हैं– हिन्दू मैरेज (हिन्दू विवाह, 1887 ई.) में शीर्षक लेख में –"चंद्रनाथ बाबू का कथन है कि हिन्दू विवाह में जोड़ने वाली एक ऐसी शक्ति है जो अन्य देश में दुर्लभ है। तब हमारे समाज में बहुविवाह की प्रथा कैसे चली? विवाह संबंधी हमारे सभी दंभपूर्ण आदर्श केवल पत्नी के लिए ही होते हैं। अतः हमें ऐसी हिन्दू

विवाह पद्धति की आलोचना करने का पूर्ण अधिकार है जो आज के समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है।...''यहाँ टैगोर ने चंद्रबाबू के कथन पर प्रश्न किया हैं जो यर्थाथ हैं, क्योंकि यह समाज की वास्तविकता थी, जिसको टैगोर ने प्रश्न के माध्यम से उभारा हैं। टैगोर ने इस लेख में कहा कि "विवाह संबंधी हमारे सभी दंभपूर्ण आदर्श केवल पत्नी के लिए ही होते हैं।" समाज के सामने ये एक गम्भीर प्रश्न हैं। टैगोर ने ऐसा ही प्रश्न बंगाली समाज से अपनी एक रचना "पत्नी का पत्र" में भी किया हैं। जहाँ भाग्य की मारी 'बिन्दु' नामक नारी का विवाह एक पागल वर से कर दिया जाता हैं। उसके बाद जब वह सब तरफ से नाउम्मीद होने पर अपने कपड़ो में आग लगाकर आत्महत्या कर लेती हैं तब "गाँव–भर के लोग चीख उठे। कहने लगे, 'लड़कियों का कपड़ो में आग लगाकर मर जाना तो अब एक फैशन हो गया हैं। लोगों ने कहा, 'अच्छा नाटक है। हुआ करें लेकिन नाटक का तमाशा सिर्फ बंगाली लड़कियों की साड़ी पर ही क्यों होता हैं, बंगाली वीर पुरूषों की धोती की चुन्नटों पर क्यों नहीं होता, यह भी तो सोचकर देखना चाहिए।"

हम इस रचना में टैगोर के हृदय की करूण वेदना की गहराई को समझ सकते हैं। लड़कियों की आत्महत्या करने की समस्या समाज में केवल उस समय ही नहीं थी वर्तमान में भी व्यापत हैं और यह प्रश्न केवल बंगाली समाज से ही नहीं हुआ वरन् सम्पूर्ण भारतीय समाज के लिए हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर को समाज में व्यापत अज्ञान, दरिद्रता, स्त्री की पराधीनता, समाजिक पतन आदि से गहरी पीड़ा होती थी। टैगोर मानते थे कि ये सामाजिक अभिशाप केवल भावानात्मक उद्‌बोधन से दूर नहीं होंगे, इनके लिए तो जन–साधारण के बीच में रह कर रचनात्मक कार्य करने होगे और उन्होंने ऐसा किया भी। भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा को देख उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि "स्त्रियों का महत्व और स्थिति की दृष्टि पुरूषों से कम नहीं आँकना चाहिए। स्त्रियों का विकास पुरूषों पर आश्रित नहीं रहना चाहिए, पर साथ ही उनके नारी सुलभ आदर्शों और कोमल गुणों को बनाए रखने के लिए पुरूषोचित कठोर कार्यों में प्रवृत होने से यथासम्भव दूर रखना चाहिए। कवि की मान्यता थी कि नारियाँ पुरूषों की पूरक हैं, प्रतिस्पर्द्धी नहीं।" टैगोर की नारी चित्राकृतियाँ भी उनकी इसी परिपक्वता एवं हृदय की अंचेतन मन की प्रस्तुति प्रतीत होती हैं। जहाँ वह पुरूषों की सहचरी के रूप में उपस्थित हुई हैं। (देखिये चित्र सं०–1)

रवींद्रनाथ के कथन की सार्थकता हम उनके नाटक 'चित्रांगदा' में पाते है जहाँ चित्रांगदा अन्तिम दृश्य में अर्जुन को आत्म–परिचय–दान के उपलक्ष्य में सगर्व घोषणा करती है:–

चित्र सं. 1

"আমি চিত্রাংগদা।
ছেবী নাহি, নহি আমি সামান্যা রমণী।
নহ, অবহেলা করি পশিয়া রাখিবে
পিছে সে–অ্যো অমি নাহে। যদি পার্শ্বে রাখো
মোরে সংকটের পথে, দুরুহ চিন্তার
যদি অংশ দাঅ্যো, যদি অনুমতি করো
কঠিন ব্রতের তব সহায় সহচরী,
আমার পাইবে তব পরিচয়।

(मैं देवी नहीं हूँ, सामान्य नारी भी नहीं– मैं तो चित्रांगदा हूँ। मैं ऐसी नहीं हूँ जिस को तुम पूजनीय बनाए रख सको और न ऐसी हूँ जिसको तुम अवहेलना कर सको। यदि तुम संकट के मार्ग पर मुझे अपना साथी बनाओ, यदि दुरूह चिंता का कुछ भाग मुझे भी वहन करने दो, यदि अपने कठिन व्रत में सहायता पहुँचाने के लिए मुझे अनुमति दो, यदि तुम अपने सुख दुख की मुझे सहचरी बनाओ, तभी तुम मेरा परिचय पा सकोंगे)

यह स्वर जिसका है वह पौराणिक नारी नहीं, सम्पूर्ण रूप से आधुनिक नारी हैं। इस आधुनिक नारी की कीर्ति तथा कण्ठ–स्वर से परवर्ती रवींद्र– साहित्य पूर्ण हैं। चित्रांगदा में उसका प्रथम निःसंशय आविर्भाव होता हैं।"

यहाँ चित्रांगदा के स्वर में एक नारी की प्रबल भावना व्यक्त होती हैं। जो न तो पुरूषों की प्रतिस्पर्द्धी बनना चाहती है न पूजनीय और न ही अवहेलना। वह पुरूषों से कदम से कदम मिला कर चलना चाहती है, वह उनके हर कठिन व्रत में उनकी सहचरी बनना चाहती है अर्थात नारी पुरूषों की पूरक बनना चाहती हैं। यहीं भाव हम टैगोर की विभिन्न चित्राकृतियों में भी देख पाते हैं।

टैगोर की एक अन्य कृति 'मुक्ति' को देखिए जहाँ टैगोर ने एक घरेलू बंगाली महिला की मन:स्थिति का सजीव चित्रण किया हैं।

चित्र सं. 2

" बाईस वर्ष तक मैं एक ही चक्के में बँधी रही, घुमती में अंधी बनी हुई। मुझे मालूम ही नहीं मैं क्या हूँ, मुझे यह भी मालूम नहीं हुआ कि यह पृथिवी भी कोई चीज है और उसका कोई अर्थ भी हैं।... मैं सिर्फ यही जानती थी कि पकाने के बाद खाना है, और खाने के बाद पकाना है, बाईस साल तक मैं एक ही चक्के में बँधी रही।...आज पहली बार बाईस वर्ष के बाद वसंत इस घर में आया है। जँगले से आकाश की ओर ताकते हुए मन आंनद से सिहर–सिहर उठता है। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मैं नारी हूँ, सहीयसी हूँ, मेरे ही सुर में निंद्रा–हीन चंद्रमा ने अपनी ज्योत्सना रूपी वाणी को बाँधा है।...बाईस वर्ष तक मैं तुम्हारे इस घर में कैदिन थी। फिर भी उसके लिए दुख नहीं

था, बात यह है सुधबुधहीनता में दिन बीत जाते थे, यदि जीती तो और भी बीत जाते। जहाँ पर जो भी हमारे रिश्तेदार थे मुझे लक्ष्मी कहते थे, मानों इस जीवन में ऐसी कहलाना ही मेरी परम सार्थकता थी।''

नारी विशेषकर भारतीय नारी की अत्यन्त मर्मभेदी कहानी इस कविता में है। नारी की दयनीय पराधीन दशा का इसमें चित्रण है। (देखिए चित्र सं. 2) सच है, इसमें नारी को आधुनिका की तरह विद्रोह की तलवार झनझनाते नहीं सुनते परंतु उसे एक भाग्यवादी की तरह अपने अंत का आवाहन करती हुए पाते हैं, किंतु क्या यही हमारे यहाँ की नारी का सच्चा चित्र नहीं है? उर्वशी व अन्य कविताओं में टैगोर ने नारी को कल्पना के रंगीन च मों से देखा है किंतु बंगाली मध्यवित श्रेणी की नारी का जो चित्र 'मुक्ति' कविता में दिखलाया गया है वह वास्तविक हैं। यह केवल बंगाली नारी का कहना उचित न होगा यह तो मध्यवित भारतीय स्त्री का चित्रण कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।

टैगोर की एक अन्य कविता 'दो नारीयाँ' की कुछ पक्तियाँ देखिए जहाँ टैगोर ने नारी के दो रूपों का चित्रण किया हैं। एक वो जो हम ऊपर चर्चित कर चुके है, और दूसरी वह जिसके विषय में हम बात कर रहें है:–

चित्र सं. 3

चित्र सं. 4

'' कौन था वह क्षण
जब सृजन के समुद्र–मंथन से,
पताल का भाय्यातल छोड़कर,
दो नारीयाँ ऊपर आयीं?
एक थी उर्वशी, सौंदर्यमयी,
विश्व के कमना–राज्य की रानी,
स्वर्ग–लोक की अप्सरा।
और दुसरी थी लक्ष्मी, कल्याणमयी,
विश्व की जननी के रूप में परिचिता,
स्वर्ग की ईश्वरी।''12

नारी के अनेक रूप होते है वह कन्या, प्रेमिका, पत्नी, माँ आदि रूपों में अपने जीवन के विभिन्न कर्तव्यों का निर्वाह करती हैं। उर्वशी रूप (देखिए चित्र सं. 3) नारी का सौंद्रयमयी यौवन का रूप है और लक्ष्मी का रूप (देखिए चित्र सं.–4) कल्याणमयी, विश्व जननी का रूप हैं।

चित्र सं. 5

1928 के आस पास ही रवींद्रनाथ टैगोर का चित्र रचना में पूरी गंभीरता के साथ आना भारतीय चित्रकला की बड़ी घटना के रूप में देखा जाना चाहिए। 1930 तक आते नोबेल सम्मान से सम्मानित विश्वकवि रवीन्द्र ब्रहमवादी और रहस्यवादी रूझानों से अपने को पूरी तरह से काट कर अपने चित्रात्मक रूपजगत के माध्यम से एक आधुनिक भारतीय चित्रकला का सूत्रपात किया और हजारों वर्षो से चली आ रही परम्परा की तत्रिक भी परवाह किये बगैर कला इतिहास में पहली बार आम जन को अपने चित्रजगत में स्थान दिया। जिसमें नारी पात्रों की अधिकता रही। जहाँ वह पुरूष पात्रों के साथ उनकी सहचरी (देखिए चित्र सं०–1) के रूप में भी नजर आई और अपने विभिन्न स्वतंत्र अस्तित्व में भी (देखिए चित्र सं०–5 माता–पुत्र)।

ठाकुर परिवार में नारी को बोझ या अवनति नहीं बल्कि समाज की उन्नति समझा जाता था। जहाँ एक ओर पितामह व महिर्ष पिता ने सती प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियो को समाज से जड़ से मिटाने के लिए भरसक प्रयास किये वहीं विधवा विवाह, पुर्न–विवाह जैसे समाजिक कुरीतियो के विरूद्ध रवींद्र ने अपने जीवन में ठोस कदम उठाकर समाज को दर्पण दिखाया।

''इन्होंने 1910 ई. में अपने एक मात्र जीवित पुत्र का विवाह एक विधवा से किया था।'' यह कदम उनकी परिपक्वता और एक स्वस्थ्य मानसिकता का परिचय है जो अपने समाज की रूढ़िवादिताओं को नहीं मानते बल्कि समाज परिवार, राष्ट्र की उन्नति में विश्वास रखते हैं।

इतना ही नहीं आगे रवींद्र ने ग्रामीण जीवन के पुनर्निर्माण के लिए एक संस्थान की स्थापना की जो 'श्रीनिकेतन' नाम से विख्यात

हुआ। 'श्रीनिकेतन' संस्थान के प्रेरणा बीज रवीन्द्र के मन में बहुत पहले ही पनप गये थे। जग वे उनतीस वर्ष की अवस्था में 1890 में अपने पैतृक संपात्ति की देखरेख के लिए पूर्वी बंगाल गये और सियालदह में रहे तब उन्होंने वहाँ जो जीवन को देखकर अनुभव किया उसी का ही यह साकार रूप आज तक हमारे सामने उपस्थित हैं। टैगोर ने अपने संस्मरण में बताया है कि "वहीं पहली बार गाँव के लोगों, उनकी तकलीफों और खेती, कर्ज और खरीदबिकी से संबंधित अनेक समस्याओं से उनका सीधा साबका हुआ।...उन्होंने बताया कि जमींदार या मालिक मानकर लोग उनके या जिला कलक्टर के सामने भिखारी की तरह आते थे। लगता, उनमें स्वंतत्र और आत्मनिर्भर मनुष्यों की तरह अपने पैरों पर खड़ा होने की शक्ति ही नहीं हैं।"

ये अनुभव वे कभी नहीं भुले और कुछ विचारों ने स्पष्टतः उनके मन में घर कर लिया, उनको आत्मनिर्भर बनाने व स्वालम्बन को बड़ावा देने के लिए रवींद्र ने श्रीनिकेतन संस्थान की संस्थापना की। ऐसे ही भावों के अप्रत्यक्ष बिम्ब हम टैगोर की मानवाकृतियों वाली रूपसंपदा में भी पाते हैं जो सम्भवतः इन्हीं अनुभवों का प्रतिफल प्रतीत हैं। (देखिए चित्र सं०–6,7)

चित्र सं. 6

चित्र सं. 7

टैगोर का सारा जीवन मनुष्य को उसकी महिमा के प्रति सचेतन करने का प्रयास है; संकीर्ण समाज, देश, राष्ट्रीयता और धार्मिकता को शिथिल करने के लिए महान् संघर्ष का प्रयास है; तथा मनुष्य में प्रेम, समाज में लगाव, औदार्य और भ्रातृभाव को उदबुद्ध करने का प्रयत्न है। उन्होंने केवल अपने तत्कालीन समाज, राष्ट्र की वेदना को ही न समझा बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर की वेदना को भी महसूस किया। ऐसे महान व्यक्तित्व की जड़े निश्चत ही अपने तत्कालीन सामाजिक परिवेश और पूर्व कालीन पृष्टभूमि व अपने वातावरण के परिदृश्य से बहुत गहराई से समाई हैं। इस गहराई के कारण ही टैगोर ने उपरोक्त वर्णित किया–कलापों को पूर्ण निष्ठा और संवेदनशीलता के साथ पूर्ण किया और विश्व को नवीन दृष्टि भी प्रदान कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

- सरकार, सुशोभन (अनु० एस०एन०कानूनगो), "बंगाल नवजागरण" ,ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण 1997
- बंद्योपाध्याय,असित कुमार, "रवीन्द्र रचना संचयन" साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987
- अवस्थी ,डॉ० अमेरश्वर, अवस्थी, डॉ० आर० के०, "आधुनिक भारतीय समाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन" रिसर्च पब्लिकेशन्स, त्रिपोलिया, जयपुर
- नरवणे, विश्नाथ (अनु०), "रवीन्द्रनाथ के निबन्ध" (भाग–1), साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1964,
- मुक्त, प्रफुल्लचन्द्र ओझा, तिवारी, हंसकुमार, अग्रवाल, भारत भूषण, (अनु०), "रवींद्रनाथ के नाटक"(प्रथम खण्ड), साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1966
- गुप्ता, डॉ०, देवेन्द्र, "विपाशा," वर्श 29, अंक 164,मई–जून 2013, भाशा एवं संस्कृतिक विभाग, हि०प्र० शिमला
- गुप्त, मन्मथनाथ, "बँगला के आधुनिक कवि" ,किताब महल, 56, ए, जीरो रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1946
- ठाकुर, रवीन्द्रनाथ, (अनु०गोपाल प्रधान), "रवींद्रनाथ का शिक्षादर्शन", ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997

नोट – यहाँ प्रस्तुत चित्र RABINDRA CHITRAVALI paintings of Rabindranath tagore, edited by R. Siva Kumar, 2011, First publisded in India by Pratikshan 7 Jawaharlal Nehru Road, Kolkata 700013 in association with Visva-Bharati , Santiniketan and the Ministry of Culture,Government of india, Volume 1,2,3,4 से लिए गये हैं।